

## सम्पादकीय

### नियमसार : एक अनुशीलन

(गतांक से आगे...)

#### नियमसार गाथा १६६

विगत गाथा में निश्चयनय से ज्ञान, दर्शन और आत्मा का स्वरूप स्पष्ट करने के उपरान्त अब बहुचर्चित आगामी गाथा में यह बताते हैं कि केवली भगवान आत्मा को ही देखते हैं, लोकालोक को नहीं; - यदि कोई (निश्चयनय से) ऐसा कहता है तो इसमें क्या दोष है।

तात्पर्य यह है कि उसमें कोई दोष नहीं है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

अप्पसरूवं पेच्छदि लोयालयं ण केवली भगवं।

जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ॥१६६॥

( हरिगीत )

देखे-जाने स्वयं को पर को नहीं जिनकेवली।

यदि कहे कोई इसतरह उसमें कहो है दोष क्या ? ॥१६६॥

केवली भगवान आत्मस्वरूप को देखते हैं, लोकालोक को नहीं; - यदि कोई (निश्चयनय) ऐसा कहता है तो उसमें क्या दोष है ?

इस गाथा का भाव टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से पर को देखने का खण्डन है।

यद्यपि यह आत्मा व्यवहारनय से एक समय में तीन काल संबंधी पुद्गलादि द्रव्यों के गुण, पर्यायों को जानने में समर्थ केवलज्ञानमात्र स्वरूप महिमा का धारक है; तथापि केवलदर्शनरूप तीसरी आँखवाला होने पर भी, परमनिरपेक्षपने के कारण पूर्णतः अन्तर्मुख होने से केवल स्वरूप प्रत्यक्षमात्र व्यापार में लीन निरंजन निज सहजदर्शन द्वारा सच्चिदानन्दमय आत्मा को वेदन करनेवाले परमजिनयोगीश्वर शुद्ध-निश्चयनय से कहते हैं तो उसमें कोई दोष नहीं है।”

उक्त गाथा का भाव स्वामीजी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“निश्चयनय से केवली भगवान स्व को जानते हैं, पर को नहीं” - इससे कोई ऐसा अर्थ करे कि वे लोकालोक को जानते ही नहीं तो यह बात गलत है।

इस गाथा में ‘शुद्धनिश्चयनय से केवली भगवान स्व को देखते हैं’ - ऐसा

कहकर व्यवहार का खण्डन किया है।

केवली भगवान त्रिकालसंबंधी अनन्त पद्गल, दूसरे जीव तथा धर्मादि द्रव्यों के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने में समर्थ हैं। तथा अनन्तसिद्ध और केवलियों को भी जानते हैं। ऐसे समर्थ सकल विमल केवलज्ञान आदि विविध महिमा के धारक भगवान हैं। भगवान का आत्मा और केवलज्ञान भिन्न नहीं है। वह आत्मा से अभेद है। - इसप्रकार भगवान व्यवहार से लोकालोक को जानने पर भी निश्चय से अपनी आत्मा को जानते हैं।<sup>१</sup>

कोई शुद्ध अंतःतत्त्व के ज्ञाता परमवीतरागी मुनि निश्चयनय की विवक्षा से ऐसा कहें तो उसमें दोष नहीं है; क्योंकि वे व्यवहार की अपेक्षा समझकर, उसे गौण कर ऐसा कहते हैं। इससे भगवान लोकालोक को जानते ही नहीं - ऐसा कोई अर्थ करे तो वह गलत है; परन्तु व्यवहार को गौण करके निश्चयनय की विवक्षा से कहें तो दोष नहीं है।<sup>२</sup>”

इसप्रकार इस गाथा और उसकी टीका में मात्र यही कहा गया है कि यद्यपि शुद्धनिश्चयनय का उक्त कथन पूर्णतः सत्य है; तथापि केवली भगवान पर को जानते ही नहीं हैं - यह बात नहीं है। वे उन पदार्थों में तन्मय नहीं होते, उनमें अपनापन नहीं करते; इसकारण उनके पर संबंधी परम सत्य ज्ञान को भी व्यवहार कहा गया है। ॥१६६॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज एक छंद लिखते हैं, जो इसप्रकार है -

( मंदाक्रांता )

पश्यत्यात्मा सहजपरमात्मानमेकं विशुद्धं  
स्वान्तःशुद्ध्यावसथमहिमाधारमत्यन्तधीरम् ।  
स्वात्मन्युच्चैरविचलतया सर्वदान्तनिर्मग्नं  
तस्मिन्नैव प्रकृतिमहति व्यावहारप्रपंचः ॥२८२॥

( हरिगीत )

अत्यन्त अविचल और अन्तर्मग्न नित गंभीर है ।  
शुद्धि का आवास महिमावंत जो अति धीर है ॥  
व्यवहार के विस्तार से है पार जो परमात्मा ।  
उस सहज स्वात्मराम को नित देखता यह आत्मा ॥२८२॥

जो एक है, विशुद्ध है, निज अन्तःशुद्धि का आवास होने से महिमावंत है, अत्यन्त धीर है और अपने आत्मा में अत्यन्त अविचल होने से पूर्णतः अन्तर्मग्न है;

स्वभाव से महान उस आत्मा में व्यवहार का प्रपंच (विस्तार) है ही नहीं।

सोनगढ से प्रकाशित नियमसार में इस कलश के संदर्भ में जो टिप्पणी लिखी गई है; वह इसप्रकार है -

“यहाँ निश्चय-व्यवहार सम्बन्धी ऐसा समझना कि जिसमें स्व की ही अपेक्षा हो वह निश्चयकथन है और जिसमें पर की अपेक्षा आये वह व्यवहार कथन है; इसलिये केवली भगवान लोकालोक को - पर को जानते-देखते हैं ऐसा कहना व्यवहार कथन है और केवली भगवान स्वात्मा को जानते-देखते हैं ऐसा कहना निश्चय कथन है।

यहाँ व्यवहार कथन का वाच्यार्थ ऐसा नहीं समझना कि जिसप्रकार छद्मस्थ जीव लोकालोक को जानता-देखता ही नहीं है; उसीप्रकार केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते ही नहीं है।

छद्मस्थ जीव के साथ तुलना की अपेक्षा से तो केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं - यह बराबर सत्य है; यथार्थ है, क्योंकि वे त्रिकाल सम्बन्धी सर्व द्रव्य गुणपर्यायों को यथास्थित बराबर परिपूर्णरूप से वास्तव में जानते-देखते हैं। ‘केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं’ - ऐसा कहते हुए पर की अपेक्षा आती है - इतना ही सूचित करने के लिये तथा केवली भगवान जिसप्रकार स्व को तद्रूप होकर निजसुख संवेदन सहित जानते-देखते हैं; उसीप्रकार लोकालोक को (पर को) तद्रूप होकर परसुखदुःखादि के संवेदन सहित नहीं जानते-देखते, परन्तु पर से बिलकुल भिन्न रहकर, पर के सुखदुःखादि का संवेदन किये बिना जानते-देखते हैं - इतना ही सूचित करने के लिये उसे व्यवहार कहा है।”

इस कलश का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यहाँ निश्चय-व्यवहार सम्बन्धी कथन ऐसा समझना कि जिसमें स्व की ही अपेक्षा हो, वह निश्चय कथन है और जिसमें पर की अपेक्षा आये, वह व्यवहार कथन है; इसलिए केवली भगवान लोकालोक को, पर को जानते-देखते हैं - ऐसा कहना व्यवहार कथन है और केवली भगवान स्वात्मा को जानते-देखते हैं - ऐसा कहना निश्चय कथन है।

यहाँ व्यवहार कथन का वाच्यार्थ ऐसा नहीं समझना कि जिसप्रकार छद्मस्थ जीव लोकालोक को जानता-देखता ही नहीं है; उसीप्रकार केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते ही नहीं हैं।

छद्मस्थ जीव के साथ तुलना की अपेक्षा से तो केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं, वह बराबर सत्य है - यथार्थ है; क्योंकि वे त्रिकाल सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को यथास्थिति बराबर परिपूर्णरूप से वास्तव में जानते-देखते हैं। 'केवली भगवान लोकालोक को जानते-देखते हैं' ऐसा कहते हुए पर की अपेक्षा आती है तथा केवली भगवान जिसप्रकार स्व को तद्रूप होकर सुखदुःखादि के संवेदन सहित नहीं जानते-देखते; परन्तु पर से बिल्कुल भिन्न रहकर, पर के सुख-दुःखादि संवेदन किये बिना जानते-देखते हैं। इतना ही सूचित करने के लिए उसे व्यवहार कहा है।<sup>१</sup>

**ज्ञान पर को जानता है; अतः व्यवहार कहा है, इससे कोई ऐसा माने कि ज्ञान पर को जानता ही नहीं तो ऐसा नहीं है।<sup>२</sup>**

इसप्रकार इस कलश में मात्र इतना ही कहा गया है कि शुद्धनिश्चयनय के विषयभूत भगवान आत्मा में व्यवहार का प्रपंच नहीं है, व्यवहारनय के द्वारा निरूपित विस्तार नहीं है, गौण है।

### नियमसार गाथा १६७

विगत गाथा में यह कहा गया है कि केवली भगवान आत्मा को देखते-जानते हैं, पर को नहीं - निश्चयनय के इस कथन में कोई दोष नहीं है। अब इस गाथा में केवलज्ञान का स्वरूप समझाते हैं।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

मुत्तममुत्तं दव्वं चयणामियरं सगं च सव्वं च।

पेच्छंतस्स दु णाणं पच्चक्खमणिंदियं होइ ॥१६७॥

( हरिगीत )

चेतन-अचेतन मूर्त और अमूर्त सब जग जानता।

वह ज्ञान है प्रत्यक्ष अर उसको अतीन्द्रिय जानना ॥१६७॥

मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन द्रव्यों को, स्व को, सभी को देखने-जाननेवालों का ज्ञान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष होता है।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह केवलज्ञान के स्वरूप का व्याख्यान है।

छह द्रव्यों में पुद्गल को मूर्तपना और शेष पाँच द्रव्यों को अमूर्तपना है तथा जीव को चेतनपना और शेष पाँच को अचेतनपना है। त्रिकालवर्ती मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन स्वद्रव्यादि समस्त द्रव्यों को निरन्तर देखने-जाननेवाले भगवान श्रीमद् अरहंत परमेश्वर का अतीन्द्रिय सकल विमल केवलज्ञान; क्रम, इन्द्रिय और व्यवधान रहित सकलप्रत्यक्ष है।<sup>१</sup>

इस गाथा और उसकी टीका का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“केवलज्ञान परपदार्थों को भी जानता है। इसकारण परोक्ष हो जावेगा - ऐसी शंका कोई करता है तो उसका समाधान यह है कि केवलज्ञान मूर्तिक पदार्थों में प्रवेश किये बिना ही उन्हें प्रत्यक्ष जानता है, उनके आधीन नहीं है; अतः स्वाधीन होने से परोक्ष नहीं होगा।

तथा कोई कहता है कि जब केवलज्ञान परपदार्थों में प्रवेश ही नहीं करता तो उन्हें प्रत्यक्ष कैसे जानेगा?

उपर्युक्त शंका नहीं करना चाहिए; क्योंकि केवलज्ञान अनन्त सामर्थ्य सम्पन्न होने से तीन लोक के मूर्त-अमूर्त पदार्थों को एक साथ प्रत्यक्ष जानता है।

यहाँ फिर कोई कहता है कि केवली परमाणु में प्रवेश किए बिना उसकी अनन्त शक्तियों को कैसे जान लेंगे?

इसका समाधान यह है कि केवली कहते ही उसे हैं; जो पर में प्रवेश किए बिना, अपने में रहकर समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं।

यहाँ आत्मा का स्वपरप्रकाशक स्वभाव सिद्ध करते हुए बताते हैं कि परपदार्थ के कारण आत्मा का स्वपरप्रकाशक स्वभाव नहीं है; प्रत्युत यह स्वभाव तो उसकी उपादानगत योग्यता से स्वयमेव प्रगट हुआ है। वह स्वभाव (केवलज्ञान) समस्त परपदार्थों को उनमें तन्मय हुए बिना एवं इन्द्रियों के बिना प्रत्यक्ष जानता है।<sup>१</sup>

उनके ज्ञान की निम्नांकित तीन विशेषताएँ हैं -

(१) भगवान का ज्ञान क्रमरहित है अर्थात् पहले दर्शन और बाद में ज्ञान - ऐसा क्रम भगवान के ज्ञान में नहीं है। तथा पहले परपदार्थों को सामान्य रूप से जानते हैं और बाद में विशेषरूप से जानते हैं - ऐसा भी क्रम उनके ज्ञान में नहीं पड़ता।

(२) इन्द्रियातीत होने से उनका ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है; क्योंकि इन्द्रिययुक्त ज्ञान

समस्त पदार्थों को एकसाथ नहीं जान सकता।

(३) उस ज्ञान में कोई व्यवधान नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञान के लिए कोई भी पदार्थ अगम्य नहीं है।<sup>१</sup>”

इस गाथा और उसकी टीका में यह कहा गया है कि इन्द्रिय, क्रम और व्यवधान से रहित केवलज्ञान; मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन - सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष जानता है; क्योंकि वह ज्ञान पूर्णतः निर्मल और अतीन्द्रिय है।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज 'तथा प्रवचनसार में भी कहा गया है' - ऐसा लिखकर एक गाथा प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिदियं च पच्छणं ।

सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं ॥८०॥<sup>२</sup>

( हरिगीत )

अमूर्त को अर मूर्त में भी अतीन्द्रिय प्रच्छन्न को।

स्व-पर को सर्वार्थ को जाने वही प्रत्यक्ष है ॥८०॥

देखनेवाले आत्मा का जो ज्ञान अमूर्त को, मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय पदार्थों को और प्रच्छन्न पदार्थों को तथा स्व और पर - सभी को देखता है, जानता है; वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

इस गाथा का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं-

“यहाँ यह कहा जा रहा है कि भगवान का ज्ञान इन्द्रियमूर्त और अतीन्द्रियमूर्त तथा अमूर्त पदार्थों को एक साथ प्रत्यक्ष जानता है। शरीरादि इन्द्रियगम्य हैं; अतः वे इन्द्रियमूर्त पदार्थ कहलाते हैं एवं परमाणु व सूक्ष्म स्कन्ध इन्द्रियगोचर न होने से अतीन्द्रियमूर्त कहलाते हैं।

भूत और भविष्य की पर्यायें विनष्ट और अनुत्पन्न होने से प्रच्छन्न पदार्थों की श्रेणी में आती हैं। उन सभी पर्यायों को केवलज्ञानी युगपत् प्रत्यक्ष जानते हैं। कौन जीव कब मोक्ष जाएगा, कौन जीव मोक्ष नहीं जाएगा, तत्त्व के आराधक और विराधक कहाँ जायेंगे - ये सभी बातें साधारण जीवों के लिए अगम्य होने पर भी केवली के लिए पूर्णतया गम्य हैं।<sup>३</sup>”

उक्त गाथा और उसकी टीका का सार यह है कि अतीन्द्रिय क्षायिक केवलज्ञान में स्व-पर और मूर्त-अमूर्त सभी पदार्थ अपनी सभी स्थूल-सूक्ष्म पर्यायों के साथ एक

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४०७

२. प्रवचनसार, गाथा ५४

३. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४०८

समय में जानने में आते हैं।

इसके बाद टीकाकार एक छन्द स्वयं प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है-

( मंदाक्रांता )

सम्यग्वर्ती त्रिभुवनगुरुः शाश्वतानन्तधामा

लोकालोकौ स्वपरमखिलं चेतनाचेतनं च ।

तार्तीयं यन्नयनमपरं केवलज्ञानसंज्ञं

तेनैवायं विदितमहिमा तीर्थनाथो जिनेन्द्रः ॥२८३॥

( हरिगीत )

अनन्त शाश्वतधाम त्रिभुवनगुरु लोकालोक के।

रे स्व-पर चेतन-अचेतन सर्वार्थ जाने पूर्णतः ॥

अरे केवलज्ञान जिनका तीसरा जो नेत्र है।

विदित महिमा उसी से वे तीर्थनाथ जिनेन्द्र हैं ॥२८३॥

केवलज्ञानरूप तीसरे नेत्र से प्रसिद्ध महिमा धारक त्रैलोक्यगुरु हे तीर्थनाथ जिनेन्द्र ! आप अनन्त शाश्वतधाम हो और लोकालोक अर्थात् स्व-पर समस्त चेतन-अचेतन पदार्थों को भलीभाँति जानते हो।

स्वामीजी इस छन्द का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“केवली भगवान की महिमा उनके केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट नयन से है; परमौदारिक शरीर, दिव्यध्वनि, समवशरण आदि से नहीं; क्योंकि ये सभी पुण्य के परिणाम हैं। समवशरण में होने वाले अतिशयों के द्वारा भी भगवान की महिमा नहीं है। जैसे कि समवशरण में सिंह और बकरी एक साथ बैठते हैं; इत्यादि नानाप्रकार के अतिशयों से उनकी महिमा नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि भगवान ने भी पुण्य का निषेध करके, अन्तर में स्थिर होकर केवलज्ञान प्रकट किया है।

समवशरण में गणधरादि मुनिराज आते हैं, इन्द्र आते हैं - यह सब पुण्य का प्रताप है, जड़ की क्रीड़ा है। इसमें चेतन की जरा भी महिमा नहीं है। यदि भगवान की महिमा बाह्य ऋद्धि के कारण होती तो बाह्य ऋद्धि होने के कारण देवतागण भी भगवान कहलाते।

सर्वज्ञदेव परमगुरु हैं और गणधरादि मुनिराज अपरगुरु हैं। इन्द्र, नरेन्द्र, वासुदेव, बलदेव आदि भगवान के चरणों में झुकते हैं; अतः भगवान से बड़ा कोई नहीं है।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १३८९

अनंत सामर्थ्य के धारक परमगुरु सर्वज्ञदेव के आंतरिक और बाह्य वैभव की जैसी भव्यता है, वैसी भव्यता अन्य किसी की नहीं होती। शरीरादि की भव्यता वास्तव में भव्यता नहीं है; क्योंकि उसके होने से सुख नहीं है और न होने से दुःख नहीं है। परन्तु अनुकूलता और प्रतिकूलता में समताभाव रखना सच्चा धर्म और सुख है।”

तीर्थंकर भगवान जिनेन्द्रदेव की महिमा के सूचक इस छन्द में यही कहा गया है कि हे जिनेन्द्र भगवान आप तीन लोक में रहनेवाले सभी भव्य आत्माओं के गुरु हो, अनन्त सुख के शाश्वत धाम हो और लोकालोक में रहनेवाले सभी चेतन-अचेतन पदार्थों को भलीभाँति जानते हो।

### नियमसार गाथा १६८

विगत गाथा में केवलज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। अब इस गाथा में यह कहते हैं कि केवलदर्शन के अभाव में केवलज्ञान संभव नहीं है। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

पुव्वुत्तसयलदव्वं गाणागुणपज्जण संजुत्तं।

जो ण य पेच्छइ सम्मं परोक्खदिट्ठी हवे तस्स ॥१६८॥

( हरिगीत )

विविध गुण पर्याय युत वस्तु न जाने जीव जो।

परोक्षदृष्टि जीव वे जिनवर कहें इस लोक में ॥१६८॥

अनेक प्रकार के गुणों और पर्यायों से सहित पूर्वोक्त समस्त द्रव्यों को जो भलीभाँति नहीं देखता; उसे परोक्ष दर्शन कहते हैं।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यहाँ ऐसा कहा है कि केवलदर्शन (प्रत्यक्षदर्शन) के अभाव में सर्वज्ञपना संभव नहीं।

पूर्वसूत्र अर्थात् १६७वीं गाथा में कहे गये समस्त गुणों और पर्यायों सहित मूर्तादि द्रव्यों को जो नहीं देखता; अर्थात् मूर्त द्रव्य के मूर्त गुण, अचेतन द्रव्य, अचेतन गुण, अमूर्त द्रव्य के अमूर्त गुण, चेतन द्रव्य के चेतन गुण; छह प्रकार की हानि-वृद्धिरूप सूक्ष्म, परमागम के अनुसार स्वीकार करने योग्य अर्थ पर्यायों जो कि सभी छह द्रव्यों

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४०८-१४०९

में सामान्यरूप से रहती हैं, पाँच प्रकार की संसारी जीवों की नर-नारकादि व्यंजनपर्यायें; पुद्गलों की स्थूल-स्थूल आदि स्कंध पर्यायें और धर्मादि चार द्रव्यों की शुद्धपर्यायें - इन गुण और पर्यायों से सहित द्रव्यसमूह को जो नहीं देखता; वह भले ही सर्वज्ञता के अभिमान से दग्ध हो; तथापि उसे संसारियों के समान परोक्ष दृष्टि ही है।”

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा और उसकी टीका का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“इस गाथा में यह बताते हैं कि केवलदर्शन के अभाव में केवलज्ञान भी सिद्ध नहीं होता।

इस गाथा में केवलज्ञान सहित केवलदर्शन को प्रत्यक्ष कहा है और द्रव्यों को सम्यक् प्रकार से नहीं देखने को परोक्ष दर्शन कहा है। इसप्रकार नास्ति से कथन किया है। इससे पहले की गाथा में अस्ति से बात की थी। जड़ के जड़, चेतन के चेतन, मूर्त के मूर्त और अमूर्त के अमूर्त - इसप्रकार विभिन्न प्रकार के गुण होते हैं और उनकी पर्यायें भी अनेक प्रकार की होती हैं। ये सभी जिसरूप में हैं, उस रूप में जो इन्हें नहीं देखता है, उसके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है; परन्तु परोक्ष दर्शन है - ऐसा यहाँ बताया है।

यहाँ बताया जा रहा है कि केवलदर्शन के अभाव में अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में सर्वज्ञपना सिद्ध नहीं होता है।”

इस गाथा और उसकी टीका में यही कहा गया है कि केवलदर्शन के बिना केवलज्ञान नहीं होता। केवलदर्शन और केवलज्ञान ही क्रमशः प्रत्यक्षदर्शन और प्रत्यक्षज्ञान हैं। चक्षुदर्शन आदि अन्यदर्शन और मतिज्ञान आदि अन्य ज्ञान परोक्ष दर्शन-ज्ञान हैं।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( वसंततिलका )

यो नैव पश्यति जगत्त्रयमेकदैव

कालत्रयं च तरसा सकलज्ञमानी।

प्रत्यक्षदृष्टिरतुला न हि तस्य नित्यं

सर्वज्ञता कथमिहास्य जडात्मनः स्यात् ॥२८४॥

१. श्रुतबिन्दु, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है।



( हरिगीत )

‘मैं स्वयं सर्वज्ञ हूँ’ - इस मान्यता से ग्रस्त जो।  
पर नहीं देखे जगतत्रय त्रिकाल को इक समय में।।  
प्रत्यक्षदर्शन है नहीं ज्ञानाभिमानी जीव को।  
उस जड़आत्मन को जगत में सर्वज्ञता हो किसतरह? ॥२८४॥

सर्वज्ञता के अभिमानवाला जो जीव एक ही समय तीन लोक और तीन काल को नहीं देखता; उसे कभी भी अतुल प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता; उस जड़ आत्मा को सर्वज्ञता किसप्रकार होगी ? तात्पर्य यह है कि वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“कुछ लोग गृहस्थ अवस्था में भी सर्वज्ञता मानते हैं; परन्तु कपड़ा आदि रहते जब मुनिपना ही नहीं होता, तब सर्वज्ञपना तो हो ही नहीं सकता।

यहाँ तो सर्वज्ञपने की व्याख्या करते हुए टीकाकार मुनिराज कहते हैं कि जिसे तीन काल और तीन लोक का ज्ञान नहीं है, ऐसे पुरुष को सर्वज्ञ मानना तो मूर्खता है, ऐसी मान्यतावाले जीव जड़ हैं; क्योंकि अल्पज्ञता में सर्वज्ञता माननेवाला परम्परा से निगोद जाता है और वहाँ जड़ जैसा ही हो जाता है; अतः उसे यहाँ जड़ कहा है।<sup>१</sup>

आत्मा स्व-परप्रकाशक है - उसका स्वभाव सभी को जानने की सामर्थ्यवाला है। जो ऐसा नहीं मानकर अल्पज्ञ को सर्वज्ञ मानता है; वह मिथ्यादृष्टि है, जड़ है।<sup>२</sup>”

इस छन्द में यही कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं को सर्वज्ञ मानता है - ऐसा सर्वज्ञाभिमानी जीव जब एक ही समय तीन लोक और तीन काल को नहीं देखता, नहीं जानता; तो वह सर्वज्ञ कैसे हो सकता है?

तात्पर्य यह है कि वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता; क्योंकि सर्वज्ञ कहते ही उसे हैं; जो लोक के सभी द्रव्यों, उनके सभी गुणों और उनकी सभी पर्यायों को बिना किसी के सहयोग देखे-जाने।

## नियमसार गाथा १६९

विगत गाथा में यह कहा गया था कि केवलदर्शन के बिना केवलज्ञान संभव नहीं है और अब इस गाथा में व्यवहारनय संबंधी कथन को निर्दोष बता रहे हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

लोयालोयं जाणइ अप्पाणं णेव केवली भगवं।  
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ ॥१६९॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४१३-१४१४

२. वही, पृष्ठ १४१४

( हरिगीत )

सब विश्व देखें केवली निज आत्मा देखें नहीं।  
यदि कहे कोई इसतरह उसमें कहो है दोष क्या? ॥१६९॥

व्यवहारनय से केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं, आत्मा को नहीं - यदि कोई ऐसा कहे तो उसे क्या दोष है ? तात्पर्य यह है कि उसके उक्त कथन में कोई दोष नहीं है।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह व्यवहारनय के प्रादुर्भाव का कथन है।

‘व्यवहारनय पराश्रित है’ - ऐसे शास्त्र के अभिप्राय के कारण व्यवहारनय से, व्यवहारनय की प्रधानता से; सकलविमल केवलज्ञान है तीसरा नेत्र जिनका और अपुनर्भवरूपी कमनीय मुक्ति कामिनी के जीवितेश (प्राणनाथ) सर्वज्ञ भगवान, छह द्रव्यों से व्याप्त तीन लोक को और शुद्ध आकाशमात्र आलोक को जानते हैं और निर्विकार शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं जानते - ऐसा यदि व्यवहारनय की विवक्षा से कोई जिनेन्द्र भगवान कथित तत्त्व में दक्ष जीव कदाचित् कहे तो उसे वस्तुतः उसे कोई दोष नहीं है।”

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा और उसकी टीका का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“स्व को जानने से पर ज्ञात हो जाता है - यह निश्चय कथन है और भगवान पर को जानते हैं - ऐसा कहना व्यवहार है। पर का ज्ञान परोक्ष नहीं है; पर प्रत्यक्ष है। ऐसा चैतन्य का सामर्थ्य है। भगवान को लोकालोक के ज्ञान का वेदन है, पर लोकालोक का वेदन नहीं है। यह भेदज्ञान कराने के लिए भगवान व्यवहार से लोकालोक को जानते हैं - ऐसा कहा है।<sup>१</sup>

श्रुतज्ञान का अंश नय है। केवली को नय नहीं है; परन्तु कोई ज्ञानी ऐसा कहे कि केवली भगवान पर को व्यवहार से जानते हैं तो उसमें दोष नहीं है। उसे आत्मा का ज्ञान हुआ है; अतः वह ऐसा कहता है कि केवली निश्चय से स्व को ही देखते हैं, पर को नहीं। और व्यवहार से वे पर को ही देखते हैं, स्वयं को नहीं। - यह कथन ठीक है। केवली का आत्मा लोकालोक को छूता नहीं है अर्थात् उसमें एकमेक होकर

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४१७

नहीं जानता है - 'इस बात में कोई दोष नहीं है' - ऐसा कहकर आचार्यदेव आत्मा के अलावा लोकालोक की सत्ता भी सिद्ध करते हैं।<sup>१</sup>

जो ज्ञान है, वही आत्मा है। इसप्रकार स्वसन्मुख होकर ज्ञानी जिस समय स्व को जानता है, उस समय साधकदशा में जो राग है, उस राग के वेदन बिना (अपनेपन बिना) राग का जो ज्ञान है, वह निश्चय है और ज्ञानी आत्मा राग को जानता है - ऐसा कहना असद्भूत व्यवहार है। जो ज्ञान है, वही आत्मा है - इसप्रकार स्वसन्मुख होकर ज्ञानी जिस समय स्व को जानता है, उस समय साधकदशा में जो राग है, उस राग के वेदन बिना राग का जो ज्ञान है, वह निश्चय है और ज्ञानी आत्मा राग को जानता है, ऐसा कहना असद्भूत व्यवहार है।

ज्ञानी के चारित्रगुण की पर्याय में पूर्णता नहीं है; अतः उसे राग के दुःख का वेदन है। - इसप्रकार शास्त्र में कहा जाता है; परन्तु ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञान में विकास हुआ है। ज्ञानी उस ज्ञान का वेदन करता हुआ तथा राग का वेदन न करता हुआ उसकी पर्याय में राग का ज्ञान होना निश्चय है और राग, पुण्य और अधर्म है; उसका वेदन (अपनापन) ज्ञान में नहीं है। ऐसी स्वसामर्थ्य ज्ञानी की पर्याय में प्रगट हुई है।<sup>२</sup>

निश्चय से सम्यग्ज्ञानी केवली को नहीं जानते। यदि वे निश्चय से केवली को जानें तो केवली का आत्मा और उनका आत्मा एकमेक हो जावेगा। केवली का ज्ञान ज्ञानी की आत्मा में होता है, यह निश्चय है; परन्तु वे ज्ञानी केवली को जानते हैं - ऐसा कहना व्यवहार है; क्योंकि केवली पर हैं।

कोई कहता है कि केवली भगवान तो शुद्ध हैं; उन्हें पर क्यों कहा है?

उनसे कहते हैं कि इस आत्मा से केवली भगवान भिन्न हैं; क्योंकि केवली के कारण आत्मा में ज्ञान नहीं होता; परन्तु उन्हें अपने कारण पर का ज्ञान होता है - ऐसा कहना व्यवहार है।

भाई! यह बात अत्यन्त शान्तचित्त से सुनना चाहिए। केवली लोक और अलोक को व्यवहार से जानते हैं; परन्तु आत्मा को व्यवहार से नहीं जानते। आत्मा, आत्मा को नहीं जानता है - यह बात नहीं है; परन्तु आत्मा आत्मा को व्यवहार से नहीं जानता है। - यह बात है।<sup>३</sup>

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४१७

२. वही, पृष्ठ १४१८

३. वही, पृष्ठ १४१९-१४२०

१६६वीं गाथा में यह कहा था कि केवली भगवान निश्चयनय से आत्मा को जानते हैं, पर को नहीं - यदि कोई व्यक्ति निश्चयनय की मुख्यता से ऐसा कथन करता है तो उसमें कोई दोष नहीं है। अब इस गाथा में ठीक उससे विरुद्ध कहा जा रहा है कि यदि कोई व्यक्ति व्यवहारनय की मुख्यता से यह कहता है कि व्यवहारनय से केवली भगवान मात्र पर को जानते हैं, लोकालोक को जानते हैं, आत्मा को नहीं तो उनका यह कथन भी पूर्णतः निर्दोष है।

यद्यपि निश्चय और व्यवहारनय की मुख्यता से किये दोनों कथन अपनी-अपनी दृष्टि से पूर्णतः सत्य हैं; तथापि प्रमाण की दृष्टि से केवली भगवान स्व और पर दोनों को एक साथ एक समय में देखते-जानते हैं - यह कथन पूर्णतः सत्य है।

जैनदर्शन की कथनपद्धति नहीं जानने से उक्त कथनों में अज्ञानीजनों को विरोध भासित होता है; पर स्याद्वाद शैली के विशेषज्ञों को इसमें कोई विरोध भासित नहीं होता।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव 'तथा स्वामी समन्तभद्र द्वारा भी कहा गया है' - ऐसा लिखकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है-

( अपरवक्त्र )

स्थितिजनननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्।

इति जिन सकलज्ञलांछनं वचनमिदं वदतांवरस्य ते ॥८१॥<sup>१</sup>

( हरिगीत )

उत्पादव्ययध्रुवयुत जगत यह वचन हे वदताम्बरः।

सर्वज्ञता का चिह्न है हे सर्वदर्शि जिनेश्वरः ॥८१॥

हे वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ मुनिसुव्रतनाथ भगवान ! 'जंगम और स्थावर यह चराचर जगत प्रतिक्षण उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणवाला है' - ऐसा यह आपका वचन आपकी सर्वज्ञता का चिह्न है।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“हे भगवन्! वास्तव में आप ही श्रेष्ठ हैं। हे नाथ! आप सर्वज्ञ हैं। कोई कहे आपने कैसे जाना कि भगवान सर्वज्ञ हैं, तो उससे कहते हैं कि भूत पर्याय का व्यय और नवीन पर्याय का उत्पाद और वस्तु अपेक्षा ध्रौव्य - इसप्रकार द्रव्य प्रतिसमय उत्पादव्ययध्रौव्यरूप त्रयात्मक है तथा एक-एक गुण में भी उत्पादव्ययध्रुवपना है।

१. बृहत्स्वयंभूस्तोत्र : भगवान मुनिसुव्रतनाथ की स्तुति, छन्द ११४

इसप्रकार सम्पूर्ण जगत उत्पादव्ययध्रुवलक्षणवाला है और एक समय में सम्पूर्ण है। एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों आ जाते हैं। जिसे इसका पता मिला, वह सर्वज्ञ है। हे भगवान! आपकी वाणी में आता है कि एक समय में वस्तु परिपूर्ण है और वस्तु त्रिकाल स्वतंत्र है। जब ऐसी सम्पूर्ण पदार्थ प्रकाशिका वाणी भी अन्य के नहीं होती तो फिर सर्वज्ञता की बात ही कहाँ रही? अतः हे भगवान्! तुम्हारे अलावा अन्य कोई सर्वज्ञ नहीं है।<sup>१</sup>”

आचार्य समन्तभद्र के उक्त छन्द में यह कहा गया है कि यह सम्पूर्ण जगत उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षणवाला है - आपका यह कथन आपकी सर्वज्ञता का चिह्न है; क्योंकि सर्वज्ञ के अलावा कोई भी डंके की चोट यह बात नहीं कह सकता।

सर्वज्ञ भगवान के प्रत्यक्ष ज्ञान में वस्तु का ऐसा स्वरूप आता है। क्षयोपशम ज्ञानवाले तो इसे सर्वज्ञ के वचनों के अनुसार लिखित आगम और अनुमान से ही यह जानते हैं। आगम और अनुमान प्रमाण परोक्षज्ञान हैं।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द स्वयं लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( वसंततिलका )

जानाति लोकमखिलं खलु तीर्थनाथः

स्वात्मानमेकमनघं निजसौख्यनिष्ठम् ।

नो वेत्ति सोऽयमिति तं व्यवहारमार्गाद्

वक्तीति कोऽपि मुनिपो न च तस्य दोषः ॥२८५॥

( हरिगीत )

रे केवली भगवान जाने पूर्ण लोक-अलोक को ।

पर अनघ निजसुखलीन स्वात्म को नहीं वे जानते ॥

यदि कोई मुनिवर यों कहे व्यवहार से इस लोक में ।

उन्हें कोई दोष न बोलो उन्हें क्या दोष है ॥२८५॥

‘तीर्थकर भगवान सर्वज्ञदेव निश्चयनय से सम्पूर्ण लोक को जानते हैं और वे पुण्य-पाप से रहित अनघ, निजसुख में लीन एक अपनी आत्मा को नहीं जानते’ - ऐसा कोई मुनिराज व्यवहारमार्ग से कहे तो उसमें उनका कोई दोष नहीं है।

उक्त छन्द में उसी बात को दुहराया गया है; जो गाथा और उसकी टीका में कही गई है। अतः उक्त छन्द में प्रतिपादित परम तत्त्व के संदर्भ में यहाँ कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। ●